नहीं होता। कई बार इन आंकड़ों पर सवाल उठते हैं कि ये सही नहीं हैं। इसलिए बड़े बांधों पर आश्रित सिंचाई तंत्रों की प्रामाणिक जानकारी देना सम्भव नहीं है।

सरकार ने अनुमान लगाया है कि 1997 तक स्थापित क्षमता व वास्तविक उपयोग के बीच 88 लाख हैक्टर का अन्तर था। बड़ी व मध्यम परियोजनाएं इसमें से 47 लाख हैक्टर के अंतर के लिए जवाबदेह हैं। स्थापित सिंचाई क्षमता तथा वास्तविक सिंचित क्षेत्रफल के बीच यह अंतर काफ़ी बहस का विषय रहा है।

निजी क्षेत्र ने भूजल सिंचाई के क्षेत्र में तथा बरसाती खेती वाली ज़मीन को सिंचाई योग्य बनाने में काफी निवेश किया है। सार्वजनिक क्षेत्र की वित्तीय संस्थाओं ने निजी निवेशकों को रियायती मूल्यों पर कर्ज़ के रूप में 7000 करोड़ रुपए प्रदान किए हैं। तीसरी पंचवर्षीय योजना के बाद छोटी सिंचाई योजनाओं के हक में उल्लेखनीय बदलाव आया था। और छोटी योजनाओं में भी खास तौर से भूजल को बहुत महत्व दिया गया था।

भाग 2 : पनबिजली व बड़े बांध

पनबिजली, ऊर्जा का नया व प्रदूषण रहित स्रोत है। इसे बड़े पैमाने पर विकसित किया जा सकता है। इसके लिए जांची परखी टेक्नॉलॉजी उपलब्ध है।

जलाशय आधारित पनबिजली परियोजनाएं प्राय: बहुद्देशीय नदी घाटी परियोजनाओं का हिस्सा होती हैं। इनमें बाढ़ नियंत्रण, सिंचाई, जल प्रदाय आदि घटक भी होते हैं। अलबत्ता ऐसे उदाहरण भी हैं जहां पनबिजली को ही एकमात्र या सबसे प्रमुख लाभ माना गया है। प्रवाहित नदी में पनबिजली उत्पादन करना सम्भव है किन्तु जब बिजली उत्पादन के साथ अन्य उद्देश्य भी जोड़ दिए जाते हैं तो लाभ-लागत अनुपात बहुत बेहतर हो जाता है।

भारत की पहली पनबिजली परियोजना (स्थापित क्षमता 800 किलोवॉट) 1897 में दार्जीलिंग में निर्मित हुई थी। इसके बाद 1902 में मैसूर रियासत में शिवसमुद्रम नामक स्थान पर 4.5 मेगावॉट क्षमता वाला पहला पनबिजली स्टेशन बना।

कृष्णाराजासागर बांध जिस पर 1911 में काम शुरू हुआ था, 5 लाख हैक्टर में सिंचाई देने के अलावा शिवसमुद्रम पनबिजली स्टेशन को भी पानी उपलब्ध कराता है।

स्वतंत्रता के समय तक पनबिजली सहित बिजली विकास की रफ्तार धीमी रही। इस समय तक कुल स्थापित क्षमता 1362 मेगावॉट थी जिसमें से 508 मेगावॉट पनबिजली क्षमता थी। नियोजित विकास के पिछले पचास वर्षों में बिजली क्षेत्र की प्रगति प्रभावशाली रही। मार्च 1998 तक स्थापित क्षमता 89,000 मेगावॉट थी जिसमें से पनबिजली क्षमता 21,891 मेगावॉट थी। उस वक्त प्रति व्यक्ति बिजली की खपत काफी कम थी। 1950 में यह 15 युनिट थी जो 1996 में 459 युनिट हो गई।

भारत में ताप व पनबिजली का विकास साथ-साथ किया जा रहा है। कई अध्ययनों से पता चलता है कि पूरे बिजली तंत्र के समुचित संचालन के लिए पनबिजली का अनुपात 40 प्रतिशत रहना चाहिए। 1963 में यह अनुपात 50 प्रतिशत था मगर घटते-घटते 1998 में मात्र 25 प्रतिशत रह गया था। केन्द्रीय बिजली अभिकरण ने भारत में पनबिजली क्षमता 84,000 मेगावॉट आंकी है जो 1,48,700 मेगावॉट स्थापित क्षमता के तुल्य है। भारत में छोटे पैमाने की पनबिजली परियोजनाओं की सम्भावित क्षमता 6000 मेगावॉट आंकी गई थी।

राष्ट्रीय पनबिजली नीति

देश की विशाल पनबिजली क्षमता का तेज़ी से

भारत में पन बिजली उत्पादन क्षमता (मेगावॉट)

क्र.	नदी घाटी	60% संयंत्र चालन पर क्षमता	सम्भावित स्थापित क्षमता
1.	सिंधु घाटी	199888	33842
2.	गंगा घाटी	10715	20711
3.	ब्रह्मपुत्र घाटी	34920	66005
4.	मध्य भारत नदी तंत्र	2740	4152
5.	दक्षिण भारत की पश्चिम प्रवाही नदियां	6149	9418
6.	दक्षिण भारत की पूर्व प्रवाही नदियां	9532	14511
	योग	84044	148699

स्रोतः केन्द्रीय बिजली अभिकरण, भारत सरकार

दोहन करने के उद्देश्य से भारत सरकार ने अगस्त 1998 में पनबिजली विकास नीति घोषित की। इस नीति के कुछ अंश यहां उद्घृत किए जा रहे हैं:

पनबिजली ऊर्जा का एक नवीनीकरण योग्य, आर्थिक रूप से व्यावहारिक, प्रदूषण रहित व पर्यावरण स्नेही स्रोत है। पनबिजली स्टेशनों में तत्काल चालू करने, बन्द करने व भार परिवर्तन की निहित क्षमता होती है तथा ये बिजली तंत्र की विश्वसनीयता बढ़ाने में सहायक होते हैं। सर्वोच्च भार की पूर्ति करने के लिहाज़ से पनबिजली आदर्श विकल्प है। उत्पादन की लागत मुद्रास्फीति से मुक्त होने के अलावा समय के साथ घटती जाती है। पनबिजली परियोजनाओं का उपयोगी जीवनकाल 50 वर्ष तक हो सकता है। और ये दुर्लभ जीवाश्म ईंधन के संरक्षण में मदद करती हैं। ये दूर दराज़ के और पिछड़े इलाकों में विकास के मार्ग खोलने में भी मददगार होती हैं।

हमारे देश में आर्थिक रूप से दोहन योग्य पनबिजली की विपुल सम्भावना है। यह 84,000 मेगावॉट (स्थापित क्षमता 1,48,700 मेगावॉट) आंकी गई है। इसके अलावा छोटी, लघु व सूक्ष्म स्कीमों की सम्भावित क्षमता 6781 मेगावॉट आंकी गई है। साथ ही पम्पजनित भण्डारण के 56 स्थलों की पहचान की गई है जिनकी कुल स्थापित क्षमता 94,000 मेगावॉट होगी।

पनबिजली परियोजनाओं को आर्थिक व अन्य दृष्टि से सर्वाधिक उपयोगी माना जाने के बावजूद 1963 से ही पनबिजली का अंश घटता गया है। पनबिजली-ताप बिजली अनुपात में असंतुलन (खासकर पूर्वी व पश्चिमी क्षेत्रों में) के कारण कम मांग वाली अवधियों में ताप बिजलीघरों को बन्द करना पड़ता है। ताप बिजली संयंत्रों की क्षमता का पूरा उपयोग नहीं हो पाता और संयंत्र चालन दर में 4-5 प्रतिशत की कमी हो जाती है। यदि पनबिजली के अंश को वर्तमान 25 प्रतिशत पर भी स्थिर रखना हो तो 9वीं व 10वीं पंचवर्षीय योजनाओं में 23,000 मेगावॉट क्षमता स्थापित करनी होगी। यदि पनबिजली अंश को बढ़ाकर 30 प्रतिशत करना हो, तो इसके अतिरिक्त 10,000 मेगावॉट क्षमता और स्थापित करनी होगी।

निर्मित व निर्माणधीन बांध

भारत में सालाना वर्षा औसतन 1170 मि.मी. है। अलबत्ता समय व स्थान के अनुसार इसका वितरण एकरूप नहीं है। देश का एक-तिहाई भाग सूखा प्रभावित भी है।

केन्द्रीय जल आयोग के आकलन के मुताबिक भारत की नदियों में प्रति वर्ष 1869 अरब घन

जल संसाधनों के समुचित उपयोग हेतु ज़रूरी है कि मॉनसून के अतिशेष बहाव का भण्डारण उपयुक्त बांध स्थलों पर किया जाए। भण्डारण की सम्भावना कई बातों पर निर्भर है- विभिन्न स्थानों पर नदी के बहाव की जल वैज्ञानिक स्थिति, भूमि सतह की बनावट, सम्भावित जलाशय व बांध स्थलों की भूगर्भीय स्थिति, सामाजिक व पर्यावरणीय विस्थापन की स्वीकार्य सीमा और प्रस्तावित विकास के प्रतिकूल प्रभाव और निवेश योग्य धन की उपलब्धता वगैरह।

मीटर पानी बहता है। समेकित जल संसाधन विकास योजना के राष्ट्रीय आयोग ने इस आंकड़े को 1961 अरब घन मीटर आंका है। जैसा कि हमने पहले देखा था इस वार्षिक बहाव का तीन-चौथाई तो मॉनसून के चन्द महीनों में संकेन्द्रित होता है। जल संसाधनों के समुचित उपयोग हेतु ज़रूरी है कि मानसून के अतिशेष बहाव का भण्डारण उपयुक्त बांध स्थलों पर किया जाए। भण्डारण की सम्भावना कई बातों पर निर्भर है- विभिन्न स्थानों पर नदी के बहाव की जल वैज्ञानिक स्थिति, भूमि सतह की बनावट, सम्भावित जलाशय व बांध स्थलों की भूगर्भीय स्थिति, सामाजिक व पर्यावरणीय विस्थापन की स्वीकार्य सीमा और प्रस्तावित विकास के प्रतिकूल प्रभाव और निवेश योग्य धन की उपलब्धता वगैरह।

विभिन्न निर्मित स्कीमों के अंतर्गत फिलहाल कुल उपयोगी (लाइव) भण्डार 177 अरब घन मीटर के करीब है। निर्माणाधीन परियोजनाओं के तहत् अनुमानित भण्डारण 75 अरब घन मीटर है।

यदि हम 1 अरब घन मीटर से बड़ी परियोजनाओं को बड़ी परियोजनाएं मानें, तो अब तक 41 ऐसी परियोजनाएं बन चुकी हैं और इनकी कुल भण्डारण क्षमता 147 अरब घन मीटर तथा उपयोगी (लाइव) भण्डारण 116 अरब घन मीटर है। इसी तरह 21 परियोजनाएं निर्माणाधीन हैं। इनसे कुल भण्डारण क्षमता 66 अरब घन मीटर तथा उपयोगी भण्डारण क्षमता 51 अरब घन मीटर तैयार होगी। अर्थात ये 62 निर्मित या निर्माणाधीन परियोजनाएं 213 अरब घन मीटर कुल भण्डारण व 167 अरब घन मीटर (लाइव) भण्डारण क्षमता उपलब्ध कराएंगी।

बढ़ता विवाद

मोटे तौर पर कहें तो सदियों से बांधों ने दुनिया भर में विकास में प्रमुख भूमिका निभाई है। पूरी दुनिया में वर्षा की स्थानीय व समयगत कमी की समस्या से निपटने व बढ़ती ज़रूरतें पूरी करने; जल प्रदायु, बाढ़ों के नियंत्रण, सिंचाई, नौवहन तथा बिजली उत्पादन के लिए बांध बनाए गए। टेक्नॉलॉजी में प्रगति के साथ ज़्यादा बड़े बांध और ज़्यादा पेचीदा संरचनाएं बनाई जाने लगीं।

विभिन्न देशों व क्षेत्रों ने अपनी चुनौतियों का सामना करने तथा अपनी ज़रूरतों की पूर्ति करने के लिए विकास की विभिन्न अवस्थाओं में अपनी नीतियां बनाई हैं और इनको आगे बढ़ाते रहेंगे। इन नीतियों को मात्र इस आधार पर बुरा या अच्छा नहीं कहा जा सकता कि इनमें बड़े बांधों के निर्माण का समर्थन या विरोध किया गया है। बड़े बांधों के प्रभाव स्थान पर निर्भर होते हैं। बहरहाल बड़े बांधों से सम्बंधित बहस में हाल में एक धुव्रीकरण हुआ है तथा इसने वाद-विवाद व अंतर्राष्ट्रीय बहस का रूप ले लिया है। इसके चलते मुद्दे दरकिनार हो गए हैं।

भारत भी इस विवाद में उलझा है। चूंकि भारत अपने जल संसाधनों के लिए मॉनसून पर निर्भर है, इसलिए बड़े बांध व जलाशय बनाने की ज़रूरत और भी तीव्रता से महसूस की गई। बहरहाल स्वतंत्रता से पूर्व भारत में भयानक गरीबी थी और बारम्बार अकाल पड़ते थे किन्तु आर्थिक क्रियाकलापों की दृष्टि से ये महत्वपूर्ण नहीं थे। जब अन्ततः भारत ने नियोजित विकास की शुरुआत की तब तक दुनिया काफी आगे बढ़ चुकी थी और औद्योगिक राष्ट्रों व विकासशील गरीब देशों के बीच विशाल खाई बन चुकी थी। 1970 के दशक तक बड़े बांधों से सम्बंधित पर्यावरणीय व सामाजिक मुद्दों के प्रति जागरूकता सीमित थी। बड़े बांधों का सबसे गोचर प्रभाव ज़मीन डूबने व लोगों के विस्थापन के रूप में दिखता था। यह भी कहा गया है कि यह सही है कि

यह दलील दी गई है कि कोई भी गरीब आदिवासियों को उनके जंगल, उनकी नदियों से वंचित नहीं कर सकता और उन्हें उनकी ज़मीन व पवित्र स्थलों से हटाकर, उनकी सामुदायिक कड़ियों को ध्वस्त करके उन्हें उनकी मर्ज़ी के खिलाफ पुनर्स्थापित नहीं किया जा सकता। इनके खिलाफ तर्क ज़ोरदार हैं। ये भारतीयों को गलत आधार पर बांटने का प्रयास है।

बांध विस्थापित करते हैं मगर वंचना भी विस्थापित करती है और कहीं बड़े पैमाने पर; जलाशय से विस्थापित लोग तो परियोजना के खाते में दर्ज होते हैं जिनके लिए एक बेहतर पुनर्वास पैकेज होता है। हमें सिर्फ बांध-विस्थापितों पर नहीं वरन सूखा-प्रभावितों पर भी गौर करना होगा।

यह सही है कि कई मामलों में विस्थापन को विकास का अपरिहार्य सहगामी माना गया था। विस्थापन की पीड़ा से निपटने या पुनर्वास को संवेदनशील ढंग से सम्पन्न करने के लिए कोई विशिष्ट एजेन्सी या तंत्र नहीं था। किन्तु यह कहना भी उतना ही सही होगा कि भारत सीखने की प्रक्रिया में था। इसका मतलब यह नहीं है कि अतीत की गलतियों को अनदेखा कर दिया जाए। क्या कोई भी वैज्ञानिक प्रयास गलती किए बगैर आगे बढ़ा है? क्या चन्द गलतियों के कारण नासा ने अपना अंतरिक्ष शटल कार्यक्रम रोक दिया था? क्या हम सिर्फ इसलिए सड़कें व रेलें बनाना बन्द कर दें कि उन पर दुर्घटनाएं होती हैं? नहीं, हमें उन दुर्घटनाओं से सबक लेकर भविष्य में बेहतर प्रदर्शन करना चाहिए। उदाहरण के लिए सरदार सरोवर का पुनर्वास पैकेज कहीं बेहतर है। विश्व स्तर पर भी शायद 1972 में स्टॉकहोम में आयोजित पर्यावरण सम्मेलन ने ही बड़े बांधों के सामाजिक, पर्यावरणीय व आर्थिक पहलुओं को सामने रखा था और चेतना जागृत की थी।

सरदार सरोवर परियोजना को लेकर जितने विवाद पैदा हुए हैं तथा घृणा का जैसा कटु अभियान चला है, वैसा भारत में बहुत कम बड़े बांधों के संदर्भ में हुआ है। कुछ लोगों ने इसे एक घोर विपत्ति के रूप में देखा तो अन्य लोगों ने इसे अपनी समस्या के सबसे वांछित व विलम्बित उत्तर के रूप में जाना। विश्व बैंक पर दबाव बनाया गया कि वह स्वीकृत ऋण को निरस्त करके 'पीछे हट जाए'। सरदार सरोवर परियोजना कोई अलग-थलग मामला नहीं है। ऐसे कई अन्य बांध हैं जो विषाक्त अभियानों के लक्ष्य पर हैं।

बड़े बांधों के खिलाफ उत्साह के चलते कृषि नियोजन की सारी खामियों, बांध द्वारा निकसित पानी के समुचित उपयोग न हो पाने, समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार, कु-प्रशासन, सही व प्रगतिशील नीतियां बनाने व लागू करने में सरकार की असमर्थता वगैरह सबको बड़े बांधों के मत्थे मढ़ दिया गया।

कुछ आलोचक तो इस दृढ़ निष्कर्ष पर पहुंच चुके हैं कि बड़े बांधों से भलाई की अपेक्षा बुराई ज़्यादा होती है और वैसे भी ये पानी, ज़मीन व सिंचाई को गरीबों से छीनकर समृद्ध लोगों के हाथ सौंपने के निर्लज्ज साधन हैं; ये धरती को बंजर बनाते हैं; बाढ़, दलदलीकरण, लवणीयता उत्पन्न करते हैं; बीमारियां फैलाते हैं और भी जाने क्या-क्या।

एक विश्लेषणकर्ता का मत है कि ये आलोचक तर्कसंगत दलीलों के आधार पर अपनी बात साबित नहीं कर पाए हैं। उसका मत है कि इकॉलॉजिकल क्षति की तुलना में परियोजनाओं से लाभ कहीं ज़्यादा रहे हैं। इन परियोजनाओं की अनुपस्थिति में पर्यावरण का ह्रास, आप्रवास तथा निर्धरता कहीं ज़्यादा होंगे। किसी भी तरह से गणना करें, हर मामले में लागत की अपेक्षा लाभ ही ज़्यादा हैं और यदि सामाजिक तथा अप्रत्यक्ष लागत व लाभों को भी हिसाब में लिया जाए और परियोजना के बगैर व परियोजना सहित स्थितियों की तुलना की जाए तो नेट लाभ और भी ज़्यादा होंगे। कई विश्लेषणकर्ता तथा केन्द्रीय जल आयोग भी इससे सहमत हैं।

विस्थापितों व खासकर आदिवासियों के मानव अधिकारों को भी बांध के विरुद्ध तर्क की पुष्टि हेतु

प्रयुक्त किया गया है। यह दलील दी गई है कि कोई भी गरीब आदिवासियों को उनके जंगल, उनकी नदियों से वंचित नहीं कर सकता और उन्हें उनकी ज़मीन व पवित्र स्थलों से हटाकर, उनकी सामुदायिक कड़ियों को ध्वस्त करके उनकी मर्ज़ी के खिलाफ पुनर्स्थापित नहीं किया जा सकता। इनके खिलाफ तर्क ज़ोरदार हैं। ये भारतीयों को गलत आधार पर बांटने का प्रयास है। गोया आदिवासी 'देशज लोग' (इण्डीजेनस पीपुल) हैं। भारतीय आदिवासी तो वंचित भारतीयों की जमात के हिस्से हैं। उन्हें भी शिक्षा, बेहतर स्वास्थ्य तथा आर्थिक व सामाजिक अवसर उपलब्ध होने चाहिए। चुनाव उनका होना चाहिए। आदिवासियों समेत अन्य वंचित समुदाय बड़ी संख्या में बांधरहित जलग्रहण क्षेत्रों से विकास व अवसरों के अभाव की वजह से पलायन कर रहे हैं। पानी की बुनियादी ज़रूरत को मूलभूत मानव अधिकार माना जाना चाहिए। एक स्पष्ट आम सहमति उभर रही है कि विकास स्वयं एक मूलभूत मानव अधिकार है।

वर्तमान अध्ययन में हमारा सरोकार बांधों की विकास प्रभाविता मात्र से है। यह सिंचित खेती या भारत में ऊर्जा प्रबंधन का अध्ययन नहीं है। यह भारत में मौजूद सामाजिक, पर्यावरणीय व आर्थिक भेदभावों का अध्ययन भी नहीं है और न ही हम इस बारे में कोई सुझाव देने जा रहे हैं कि भारत को भेदभाव रहित कल्याणकारी राज्य कैसे बनाया जाए, जैसा कि भारत के संविधान में निर्देश हैं।

विश्व बांध आयोग का गठन बड़े बांधों से सम्बंधित प्रमुख मुद्दों पर विवादों की चर्चा हेतु किया गया था तथा इसका काम टिकाऊ विकास में उनकी प्रभाविता की स्वतंत्र समीक्षा प्रस्तुत करना है। यह उन मामलों की चर्चा नहीं कर सकता जो भारत के सरोकार हैं और जिन्हें देश के अंदर यहां की विधिसम्मत सरकार व लोगों को सम्भालना चाहिए। अतः इस अध्ययन को भावनाओं व जज़्बातों से बचना चाहिए तथा बड़े बांधों से सम्बंधित भारतीय अनुभव के मद्देनज़र परिदृश्य को वस्तुनिष्ठ ढंग से देखने और भारतीय लोगों की भावी आकांक्षाओं पर ध्यान देने का प्रयास करना चाहिए। यह भी देखना चाहिए कि ये अनुभव दुनिया के अन्य विकासशील लोगों के लिए क्या सबक पेश कर सकते हैं। *(स्रोत फीचर्स)*